कर्मशास्त्र : मनोविज्ञानकी भाषामें

युवाचार्यश्री महाप्रज्ञ

दर्शनके क्षेत्रमें शाश्वत और अशाश्वत—दोनों चर्चनीय रहे हैं। इन दोनोंके तीन रूप उपलब्ध होते हैं—१. शाश्वतवाद, २. अशाश्वतवाद, ३. शाश्वत-अशाश्वतवाद। जैनदर्शनने तीसरा विकल्प मान्य किया। जगत्में जिसका अस्तित्व है, वह केवल शाश्वत नहीं है, केवल अशाश्वत नहीं है, शाश्वत और अशाश्वत—दोनोंका सहज समन्वय है। तत्वकी दृष्टिसे जो सिद्धान्त है, उसपर मैं काल-सापेक्ष विमर्श करना चाहता हूँ।

कर्म भारतीय दर्शनमें एक प्रतिष्ठित सिद्धान्त है। उस पर लगभग सभी पुनर्जन्मवादी दर्शनोंमें विमर्श प्रस्तुत किया है। पूरी तटस्थताके साथ कहा जा सकता है कि इस विषयका सर्वाधिक विकास जैन-दर्शनमें हुआ है। इस विषय पर विशाल साहित्यका निर्माण हुआ है। विषय बहुत गंभीर और गणितकी जटिलतासे बहुत गुम्फित है। सामान्य व्यक्ति उसकी गहराई तक पहुँचनेमें काफी कठिनाई अनुभव करता है। कहा जाता है, आईस्टीनके सापेक्षवादके सिद्धान्तको समझनेवाले कुछ बिरले ही वैज्ञानिक हैं। यह कहना भी सत्यकी सीमासे परे नहीं होगा कि कर्मशास्त्रको समझनेवाले भी समूचे दार्शनिक जगत्में कुछ विरले ही लोग हैं।

कर्मशास्त्रमें शरीर-रचनासे लेकर आत्माके अस्तित्व तक, बन्धनसे लेकर मुक्ति तक—सभी विषयों पर गहन चिन्तन और दर्शन मिलता है। यद्यपि कर्मशास्त्रके बड़े-बड़े ग्रन्थ उपलब्ध हैं, फिर भी हजारों वर्ष पुरानी पारिभाषिक शब्दावलीको समझना स्वयं एक समस्या है। और जब तक सूत्रात्मक परिभाषामें गुँथे हुए विशाल चिन्तनको पकड़ा नहीं जाता, परिभाषासे मुक्त कर वर्तमानके चिन्तनके साथ पढ़ा नहीं जाता और वर्तमानकी शब्दावलीमें प्रस्तुत नहीं किया जाता, तब तक एक महान् सिद्धान्त भी अर्थशून्य जैसा हो जाता है।

आजके मनोवैज्ञानिक मनकी हर समस्या पर अध्ययन और विचार कर रहे हैं। मनोविज्ञानको पढ़ने पर मुझे लगा कि जिन समस्याओं पर कर्मशास्त्रियोंने अध्ययन और विचार किया था, उन्हीं समस्याओं पर मनोवैज्ञानिक अध्ययन और विचार कर रहे हैं। यदि मनोविज्ञानके सन्दर्भमें कर्मशास्त्रको पढा जाए, तो उसकी अनेक गुत्थियाँ सुलझ सकती हैं, अनेक अस्पष्टताएँ स्पष्ट हो सकती हैं। कर्मशास्त्रके सन्दर्भमें यदि मनोविज्ञानको पढ़ा जाए, तो उसकी अपूर्णताको भी समझा जा सकता है और अब तक अनुत्तरित प्रश्नोंके उत्तर खोजे जा सकते हैं।

वैयक्तिक भिन्नता

हमारे जगत्में करोड़ों-करोड़ मनुष्य हैं। वे सब एक ही मनुष्य जातिसे संबद्ध हैं। उनमें जातिगत एकता होने पर भी वैयक्तिक भिन्नता होती है। कोई भी मनुष्य शारीरिक या मानसिक दृष्टिसे सर्वथा किसी दूसरे मनुष्य जैसा नहीं होता। कुछ मनुष्य लम्बे होते हैं, कुछ बौने होते हैं। कुछ मनुष्य गोरे होते हैं, कुछ काले होते हैं। कुछ मनुष्य सुडौल होते हैं, कुछ भद्दी आकृतिवाले होते हैं। कुछ मनुष्योंमें बौद्धिक मन्दता होती है, कुछमें विशिष्ट बौद्धिक क्षमता होती है। स्मृति और अधिगम क्षमता भी सबमें समान नहीं होती। स्वभाव भी सबका एक जैसा नहीं होता। कुछ शान्त होते हैं, कुछ बहुत क्रोधी होते हैं। कुछ प्रसन्न प्रकृतिके होते हैं, कुछ उदास रहनेवाले होते हैं। कुछ निःस्वार्थवृत्तिके लोग होते हैं, कुछ स्वार्थ-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परायण होते हैं। यह सब वैयक्तिक भिन्नता प्रत्यक्ष है। इस विषयमें कोई दो मत नहीं हो सकता। कर्मशास्त्रमें वैयक्तिक भिन्नताका चित्रण मिलता ही है। मनोविज्ञानने भी इसका विशद रूपमें चित्रण किया है। उसके अनुसार वैयक्तिक भिन्नताका प्रश्न मूल प्रेरणाओंके सम्बन्धमें उठता है। मूल प्रेरणाएँ (प्राइमरी मोटिव्स) सबमें होती हैं, किन्तु उनकी यात्रा सबमें एक समान नहीं होती। किसीमें कोई एक प्रधान होती है तो किसीमें कोई दूसरी प्रधान होती है। अधिगम क्षमता भी सबमें होती है, किसीमें अधिक होती है और किसीमें कम। वैयक्तिक भिन्नताका सिद्धान्त मनोविज्ञानके प्रत्येक नियमके साथ जुड़ा हुआ है।

मनोविज्ञानमें वैयक्तिक भिन्नताका अध्ययन आनुवंशिकता (हेरिडिटी) और परिवेश (एन्वाइरर्नमेंट) के आधार पर किया जाता है। जीवनका प्रारम्भ माताके डिम्ब और पिताके शुक्राणुके संयोगसे होता है। व्यक्तिके आनुवंशिक गुणोंका निश्चय क्रोमोसोमके द्वारा होता है। क्रोमोसोम अनेक जीनों (जीन्स) का एक समुच्चय होता है। एक क्रोमोजोममें लगभग हजार जीन माने जाते हैं। ये जीन ही माता-पिताके आनुवंशिक गुणोंके वाहक होते हैं। इन्हींमें व्यक्तिके शारीरिक और मानसिक विकासकी क्षमताएँ (पोटेन्सिएलिटीज्) निहीत होती है। व्यक्तिमें ऐसी कोई विलक्षणता प्रगट नहीं होती, जिसकी क्षमता उनके जीनमें निहीत न हो। मनोविज्ञानने शारीरिक और मानसिक विलक्षणताओंकी व्याख्या आनुवंशिकता और परिवेशके आधार परकी है, पर इससे विलक्षणताके संबंधमें उठनेवाले प्रश्न समाहित नहीं होते। शारीरिक विलक्षणता पर आनुवंशिकताका प्रभाव प्रत्यक्ष ज्ञात होता है। मानसिक विलक्षणताओंके सम्बन्धमें आज भी अनेक प्रश्न अनुत्तरित हैं। क्या बुद्धि आनुवंशिक गुण है अथवा परिवेशका परिणाम है? क्या बौद्धिक स्तरको विकसित किया जा सकता है? इन प्रश्नोंका उत्तर प्रायोगिकताके आधार पर नहीं किया जा सकता। आनुवंशिकता और परिवेशसे संबद्ध प्रयोगात्मक अध्ययन केवल निम्न कोटिके जीवों पर ही किया गया है या संभव हुआ है। बौद्धिक विलक्षणताका सम्बन्ध मनुष्यसे है। इस विषयमें मनुष्य अभी भी पहेली बना हुआ है।

कर्मशास्त्रीय दृष्टिसे जीवनका प्रारम्भ माता-पिताके डिम्ब और शुक्राणुके संयोगसे होता है, किन्तु जीवका प्रारम्भ उनसे नहीं होता। मनोविज्ञानके क्षेत्रमें जीवन और जीवका भेद अभी स्पष्ट नहीं है। इसलिए सारे प्रश्नोंके उत्तर जीवनके सन्दर्भमें ही खोजे जा सकते हैं। कर्मशास्त्रीय अध्यायमें जीव और जीवनका भेद बहुत स्पष्ट है, इसलिए मानवीय विलक्षणताके कुछ प्रश्नोंका उत्तर जीवनमें खोजा जाता है और कुछ प्रश्नोंका उत्तर जीवमें खोजा जाता है। आनुवंशिकताका सम्बन्ध जीवनसे है, वैसे ही कर्मका सम्बन्ध जीवसे है। उसमें अनेक जन्मोंके कर्म या प्रतिक्रियाएँ संचित होती हैं। इसलिए वैयक्तिक योग्यता या विलक्षणताका आधार केवल जीवनके आदि-बिन्दुमें ही नहीं खोजा जाता, उससे परे भी खोजा जाता है, जीवनके साथ प्रवहमान कर्म-संचय (कर्मशरीर) में भी खोजा जाता है।

कर्मका मूल मोहनीय कर्म है। मोहके परमाणु जीवमें मूर्च्छा उत्पन्न करते हैं। दृष्टिकोण मूर्छित होता है और चरित्र भी मूर्छित हो जाता है। व्यक्तिके दृष्टिकोण, चरित्र और व्यवहारकी व्याख्या इस मूर्च्छाकी तरतमताके आधारपर ही की जा सकती है। मेक्डूगलके अनुसार व्यक्तिमें चौदह मूल प्रवृत्तियाँ और उतने ही मूल संवेग होते हैं।

मूल प्रवृत्तियाँ	मूल संवेग
१. पलायन वृत्ति	भय
२. संघर्ष वृत्ति	क्रोध
३. जिज्ञासा वृत्ति	कुतूहल भाव
४. आहारान्वेषण वृत्ति	भूख

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५. पित्रीय वृत्ति	वात्सल्य, सुकुमार भावना
६. यूथ वृत्ति	एकाकीपन तथा सामूहिकताभाव
७. विकर्षण वृत्ति	जुगुप्सा भाव, विकर्षण भाव
८. काम वृत्ति	कामुकता
९. स्वाग्रह वृत्ति	स्वाग्रहभाव, उत्कर्ष भावना
१०. आत्मलघुता वृत्ति	हीनता भाव
११. उपार्जन वृत्ति	स्वामित्व भावना, अधिकार भावना
१२. रचना वृत्ति	सृजन भावना
१३. याचना वृत्ति	दुःख भाव
१४. हास्य वृत्ति	उल्लसित भाव

कर्मशास्त्रके अनुसार मोहनीय कर्मकी अठाइस प्रकृतियाँ हैं और उसके अठाईस ही विपाक हैं। मूल प्रवृत्तियों और मूल संवेगोंके साथ इनकी तुलना की जा सकती है।

मोहनीय कर्मके विपाक	मूल संवेग
१. भय	भय
२. क्रोध	क्रोध
३. जगुप्सा	जुगुप्सा भाव, विकर्षण भाव
४. स्त्री वेद ५. पुरुष वेद ६. नपुंसक वेद	कामुकता
७. अभिमान	स्वाग्रहभाव, उत्कर्ष भावना
८. लोभ	स्वामित्व भावना, अधिकार भावना
९. रति	उल्लसित भाव
१०. अरति	दुःखभाव

मनोविज्ञानका सिद्धान्त है कि संवेगके उद्दीपनसे व्यक्तिके व्यवहारमें परिवर्तन आ जाता है। कर्मशास्त्रके अनुसार मोहनीय कर्मके विपाकसे व्यक्तिका चरित्र और व्यवहार बदलता रहता है।

प्राणी जगत्की व्याख्या करना सबसे जटिल है। अविकसित प्राणियोंकी व्याख्या करनेमें कुछ सरलता हो सकती है। मनुष्यकी व्याख्या सबसे जटिल है। वह सबसे विकसित प्राणी है। उसका नाड़ी-संस्थान सबसे अधिक विकसित है। उसमें क्षमताओंके अवतरणकी सबसे अधिक संभावनाएँ हैं। इसलिए उसकी व्याख्या करना सर्वाधिक दुरूह कार्य है। कर्मशास्त्र, योगशास्त्र, मानसशास्त्र (साइकोलोजी), शरीर-शास्त्र (एनेटोमी) और शरीरक्रिया शास्त्र (फिजियोलाजी) के तुलनात्मक अध्ययनसे ही उसको कुछ सरल बनाया जा सकता है।

मानसिक परिवर्तन केवल उद्दीपन और परिवेशके कारण ही नहीं होते। उनमें नाड़ी-संस्थान, जैविक सिद्युत्, जैविक रसायन और अन्तःस्रावी ग्रन्थियोंके स्रावका भी योग होता है। ये सब हमारे स्थूल शरीरके अवयव हैं। इनके पीछे सूक्ष्म शरीर क्रियाशील होता है और उसमें निरंतर होनेवाले कर्मके स्पंदन परिणमन या परिवर्तनकी प्रक्रियाको चलू रखते हैं। परिवर्तनकी इस प्रक्रियामें कर्मके स्पंदन, मनकी चंचलता,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शरीरके संस्थान—ये सभी सहभागी होते हैं। इसलिए किसी एक शास्त्रके द्वारा हम परिवर्तनकी प्रक्रियाका सर्वांगीण अध्ययन नहीं कर सकते। ध्यानकी प्रक्रिया द्वारा मानसिक परिवर्तनों पर नियंत्रण किया जा सकता है, इसलिए योगशास्त्रको भी उपेक्षित नहीं किया जा सकता। अपृथक्त्व अनुयोगकी शिक्षाप्रणालीमें प्रत्येक विषय पर सभी नयोंसे अध्ययन किया जाता था, इसलिए अध्येताको सर्वांगीण ज्ञान हो जाता था। आजकी पृथक्त्व अनुयोगकी शिक्षा प्रणालीमें एक विषयके लिए मुख्यतः तद् विषयक शास्त्रका ही अध्ययन किया जाता है, इसलिए उस विषयको समझनेमें बहुत कठिनाई होती है। उदाहरणके लिए, मैं कर्मशास्त्रीय अध्ययनको प्रस्तुत करना चाहता हूँ। एक कर्मशास्त्री पाँच पर्याप्तिके सिद्धान्तको पढ़ता है और वह इसका हार्द नहीं पकड़ पाता। पर्याप्तियोंकी संख्या छह होती है। भाषा पर्याप्ति और मनःपर्याप्तिको एक माननेपर पर्याप्तियोंकी संख्या छह होती है। भाषा पर्याप्ति और मनःपर्याप्तिको एक माननेपर वे पाँच होती हैं। प्रश्न है भाषा और मनकी पर्याप्तिको एक क्यों माना जाए? स्थूल दृष्टिकोणसे भाषा और मन दो प्रतीत होते हैं। भाषाके द्वारा विचार प्रकट किये जाते हैं और मनके द्वारा स्मृति, कल्पना और चिन्तन किया जाता है। सूक्ष्ममें प्रवेश करनेपर वह प्रतीति बदल जाती है। भाषा और मनकी इतनी निकटता सामने आती है कि उसमें भेदरेखा खींचना सहज नहीं होता। गौतम स्वामीके एक प्रश्नके उत्तरमें भगवान् महावीरने कहा—वचनगुप्तिके द्वारा मनुष्य निर्विचारताको उपलब्ध होता है। निर्विचार व्यक्ति अध्यात्म-योगध्यानसे ध्यानको उपलब्ध हो जाता है। विचारका सम्बन्ध जितना मनसे है, उतना ही भाषासे है। जल्प दो प्रकारका होता है—अन्तर्जल्प और बहिर्जल्प। बहिर्जल्पको हम भाषा कहते हैं। अन्तर्जल्प और चिन्तनमें दूरी नहीं होती। चिन्तन भाषात्मक ही होता है। कोई भी चिन्तन अभाषात्मक नहीं हो सकता। स्मृति, कल्पना और चिन्तन—ये सब भाषात्मक होते हैं। व्यवहारवादके प्रवर्तक वॉटसनके अनुसार चिन्तन अव्यक्त शाब्दिक व्यवहार है। उनके अनुसार चिन्तन-व्यवहारकी प्रतिक्रियाएँ वाक्-अंगोंमें होती हैं। व्यक्ति शब्दोंको अनुकूलनसे सीखता है। धीरे-धीरे शाब्दिक आदतें पक्की हो जाती हैं और वे शाब्दिक उद्दीपकोंसे उद्दीप्त होने लगती है। बच्चोंकी शाब्दिक प्रतिक्रियाएँ श्रव्य होती हैं। धीरे-धीरे सामाजिक परिवेषके प्रभावसे आवाजको दबाकर शब्दोंको कहना सीख जाता है। व्यक्त तथा अव्यक्त शिक्षा-दीक्षाके प्रभावसे शाब्दिक प्रतिक्रियाएँ मौन हो जाती हैं। वॉटसनके चिन्तनको अव्यक्त अथवा मौनवाणी कहा है।

सत्यमें कोई द्वैत नहीं होता। किसी भी माध्यमसे सत्यकी खोज करनेवाला जब गहरेमें उतरता है और सत्यका स्पर्श करता है, तब मान्यताएँ पीछे रह जाती हैं और सत्य उभरकर सामने आ जाता है। बहुत लोगोंका एक स्वर है कि विज्ञानने धर्मको हानि पहुँचाई है, जनताको धर्मसे दूर किया है। बहुत सारे धर्म-गुरु भी इसी भाषामें बोलते हैं। किन्तु यह सत्य वास्तविकतासे दूर प्रतीत होता है। मेरी निश्चित धारणा है कि विज्ञानने धर्मकी बहुत सत्यस्पर्शी व्याख्या की है और वह कर रहा है। जो सूक्ष्म रहस्य धार्मिक व्याख्या ग्रन्थोंमें अ-व्याख्यात है, जिसकी व्याख्याके स्रोत आज उपलब्ध नहीं हैं, उनकी व्याख्या वैज्ञानिक शोधोंके सन्दर्भमें बहुत प्रामाणिकताके साथ की जा सकती है। कर्मशास्त्रकी अनेक गुत्थियोंको मनोवैज्ञानिक अध्ययनके सन्दर्भमें सुलझाया जा सकता है। आज केवल भारतीय दर्शनोंके तुलनात्मक अध्ययन-की प्रवृत्ति ही पर्याप्त नहीं है। दर्शन और विज्ञानकी सम्बन्धित शाखाओंका तुलनात्मक अध्ययन बहुत अपेक्षित है। ऐसा होनेपर दर्शनके अनेक नये आयाम उद्घाटित हो सकते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org